विकास का सशक्त माध्यम

ग्रामीण शिक्षा

जितेन्द्र लोढ़ा*

भारत के संदर्भ में शिक्षा को ग्रामीण विकास से पृथक नहीं किया जा सकता है, क्योंकि भारत की लगभग 68 फ़ीसदी जनसंख्या गाँवों में रहती है, इसलिए भारत के आर्थिक विकास की अवधारणा, गाँव व गाँवगारों के विकास से परे नहीं हो सकती। उपर्युक्त शाश्वत आर्थिक सूत्र से स्पष्ट है कि भारत का आर्थिक विकास “ग्रामीण पृष्ठभूमि से सराबोरित शिक्षा” का फ़लन है। ग्रामीण शिक्षा, शिक्षा की अन्य धाराओं के समान वह धारा है, जिसका हितधारी ग्रामीण है, अतः इसकी विषय-वस्तु में गाँवों को देखने व समझने के दर्शन के साथ उन मुद्दों व समस्याओं का अधिगम शामिल है, जो ग्रामीण संस्कृति, पारिस्थितिकी, मनोविज्ञान, आर्थिक एवं राजनैतिक पृष्ठभूमि से संबंधित है। आज़ादी से लेकर अब तक लगभग भारत की सभी शैक्षिक आयोजनाओं में इस तथ्य को स्वीकारा गया है कि भारत के संदर्भ में शिक्षा के सही मायने एवं वांछना “ग्रामीण शिक्षा” ही है। चूँकि भारतीय समाज का मूल चरित्र ग्रामीण है, इसलिए भारतीय अर्थतंत्र की सार्थकता, उसके ग्रामीण सापेक्ष होने में ही है और भारतीय अर्थव्यवस्था ग्रामीण सापेक्ष तब होगी, जब भारत में ग्रामीण शिक्षा की संकल्पना पूर्ण रूप से परिपक्व हो जाएगी, जिसकी आज महती आवश्यकता है...

पृष्ठभूमि

किसी भी समाज का समग्र एवं वांछित विकास, उस समाज की शैक्षिक वांछना पर निर्भर करता है। चूँकि भारतीय समाज का मूल चरित्र ग्रामीण है, इसलिए भारतीय अर्थतंत्र की सार्थकता, उसके ग्रामीण सापेक्ष होने में ही है। गाँवों की प्रगति पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा, ऐसे में भारत के संदर्भ में शिक्षा को

* व्याख्याता-शिक्षा, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कालाडेटा, जयपुर, राजस्थान

ग्रामीण विकास से पृथक नहीं किया जा सकता। भारत की आर्थिक विचारधारा एवं योजनाओं की प्रक्रिया में राजकीय-नीति अहम साधन रही है। अतः इस संदर्भ में सामाजिक और आर्थिक न्याय के अंतर्गत लोकतांत्रिक ढाँचे का संरक्षण, आर्थिक-सामाजिक समानता, आर्थिक शक्ति के संकेद्रण, पिछड़े एवं सुविधाहीन समूहों का ध्यान एवं क्षेत्रीय-संतुलन जैसे मुद्दे शामिल हैं।¹ तथ्यात्मक सत्यों के आधार पर भारत में जन-बाहुल्य एवं परंपरागत पिछड़ेपन का सम्यक् प्रतिनिधि केवल और केवल ग्रामीण क्षेत्र है। ऐसे में भारत के वांछित विकास के लिहाज से कोई भी “शिक्षा की अवधारणा” हमारे गाँव एवं गाँवगारों से परे नहीं हो सकती। सीधा-सीधा व साफ़ मतलब है कि भारत के आर्थिक विकास के सभी प्रश्न गाँवों की आत्मनिर्भरता एवं समृद्धि के साथ ही जुड़े हुए हैं, और यह आत्मनिर्भरता एवं समृद्धि “ग्रामीण शिक्षा” की संकल्पना को पूर्ण किए बिना नहीं मिल सकती।

गाँवों की प्रगति और विकास पर ही भारत का भविष्य निर्भर है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने अपनी पुस्तक *मेरे सपनों का भारत* में भारत के आर्थिक-स्वावलंबन के लिहाज से कहा है कि, “मेरा विश्वास है और मैंने इस बात को असंख्य बार दुहराया है कि भारत चंद शहरों से नहीं, बल्कि सात लाख गाँवों से बना है। शहर अपनी हिफाजत कर सकते हैं। हमें तो अपना ध्यान गाँवों की ओर लगाना चाहिए।”² कमोबेश आज भी वही स्थिति है। भारत में 83.3 करोड़ जनसंख्या गाँवों में रहती है, जो कुल का 68.8 फ़ीसदी है तथा साथ में शहरों में रहने वाली 37.7 करोड़

जनसंख्या में काफ़ी बड़ी तादाद, गाँवों से शहरों की ओर पलायन करने वाले लोगों की है।³ इस प्रकार भारत का जन-बाहुल्य और सरोकारित वर्ग की मूल प्रकृति “ग्रामीण” है। चूँकि “शिक्षा और विकास” दोनों पद एक-दूसरे पर अन्योन्याश्रित होते हुए अपने हितधारी वर्ग (स्टेक-होल्डर) पर आधारित प्रक्रियाएँ हैं। अतः भारत के संबंध में आर्थिक विकास एवं शिक्षा, दोनों को ग्रामीण सापेक्ष होना पड़ेगा, क्योंकि भारत का विकास, ग्रामीण विकास में ही निहित है।

शिक्षा के अर्थशास्त्रीय उपागम में कौशलों से परिपूर्ण मानव पूंजी स्टॉक व उसकी प्रति व्यक्ति आर्थिक उत्पादकता तथा उत्पादन के तकनीकी विकास जैसे घटक शामिल हैं। शिक्षा के आर्थिक मूल्यों के लिहाज से शिक्षा में समाज की मूल प्रकृति व माँगों को केंद्र में रखकर, नवाचार के अंतर्जात प्रतिरूप और समाजोपयोगी काम एवं सीखने की प्रक्रियाएँ महत्वपूर्ण हैं।⁴ इस संबंध में सुप्रसिद्ध अर्थ-चिन्तक टी.डब्ल्यू. शुल्ज का यह कहना एकदम यथार्थवादी व समीचीन है कि, “आर्थिक विकास के लक्ष्य हेतु पूंजी हो, भूमि हो, भौतिक प्रसाधन मौजूद हो, किन्तु किसी भी कारीगर को अपने व्यवसाय का तकनीकी-ज्ञान उपलब्ध न हो, स्थानीय अर्थव्यवस्था की प्रकृति का भाव व ज्ञान न हो, साक्षर न हो तो उत्पादन (आय) में कमी आना स्वाभाविक है।”⁵ भारत के संबंध में समाज की मूल प्रकृति “ग्रामीण” है, इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता है। अतः विकास के मायनों में भारतीय अर्थव्यवस्थाओं में “ग्रामीणीय सापेक्षता” अर्जित करना एक आवश्यकता आधारित कार्यक्रम है। इस निमित्त

ग्रामीण शिक्षा के क्षेत्र में किया गया निवेश, विकासानुकूल मानवीय संपदा, वांछित आर्थिक व सामाजिक परिवर्तन तथा आवश्यकतानुसार जनशक्ति नियोजन करने देगा, फ़लन गाँवों में कृषि, गाँव-जनित उद्योग, नवाचार एवं तकनीकी विकास, रोज़गार संवर्द्धन, आर्थिक एवं सामाजिक समानता जैसे अनेक घटकों को वांछित बल मिलेगा। अंत में लेकिन अंतिम नहीं, भारत के व्यवहार एवं स्वभाव से प्रत्यक्ष होकर हम कह सकते हैं कि भारत के संबंध में आर्थिक विकास का अनिवार्य आधार ग्रामीण शिक्षा ही है, तो क्यों न हम हमारी शिक्षा व उसकी व्यवस्थाओं को गाँवों की ओर ले चलें।

ग्रामीण शिक्षा के मायने

अपने व्यापक मायनों में शिक्षा एक लोक सेवा है, जो सदैव अपने हितधारियों (स्टेक-होल्डर्स) अर्थात् उसकी माँग करने वालों के अनुकूल होती है। इसी कारण पाठ्यक्रम एवं शिक्षा-सरोकारित मुद्दे व्यक्ति, देश, काल, बहुलता एवं परिस्थिति सापेक्ष होते हैं। भारत में “सभी के लिए शिक्षा” अभियान के तहत बराबरी एवं विकास लाने की भावना से शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाया गया है, जिसमें समाज के पिछड़े हिस्सों एवं हाशिए वाले वर्गों का हित-संवर्द्धन करते हुए, 6 से 14 वर्ष के सभी बालकों के लिए अनिवार्य एवं मुफ्त शिक्षा के प्रावधान गढ़े गए हैं। इसके अलावा, लक्ष्यपरक शैक्षिक विकास के लिहाज़ से देश में अनेक योजनागत एवं नीतिगत प्रावधानों को आज तक सामयिक माँगों के अनुरूप, अनवरत रूप से रचित व फ़लीभूत

किया जा रहा है। इतना कुछ होने व करने के बावजूद, आज भी भारतीय शिक्षा की चौहद में “गुणवत्ता एवं आवश्यकता आधारित शिक्षा” की संकल्पना तो दूर, संपूर्ण साक्षरता के लक्ष्य के लिए संघर्ष चल रहा है। इसके मूल में चाहे जो कारण हों, लेकिन एक दृष्टि यह अवश्य कहती है कि यदि शिक्षा व उसकी व्यवस्थाएँ अपने हितधारियों अर्थात् प्रयोगकर्ताओं के परिवेश से अनुकूलन लिए हुए हैं, तो वहाँ शिक्षा की गुणवत्ता, समानता, पहुँच-स्तर एवं जन-तादात्म्य जैसे शैक्षिक स्वरूप अपने आप व अवश्य फ़लीभूत होंगे। चूँकि भारत गाँवों एवं ग्रामीण संस्कृति वाला देश है, अतः यहाँ विकास की कोई भी धारा, बिना ग्रामीण शिक्षा की गली से गुज़रे अपना अस्तित्व नहीं बना पाएगी।

यक्ष प्रश्न यह है कि “ग्रामीण शिक्षा” के मायने क्या हैं? इस प्रश्न पर विचार करने से पूर्व यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि ग्रामीण शिक्षा का आशय भौगोलिक विभक्ति से कदापि नहीं है और न ही शिक्षा शहरी, कस्बाई या ग्रामीण हो सकती है, वो तो समाज विशेष होती है, हाँ, शिक्षा समाज सापेक्ष अवश्य होती है, इसलिए शिक्षा अपनी माँगों के समाज सापेक्ष रूप धर लेती है, यथा—जनसंख्या शिक्षा, पर्यावरण शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा, कम्प्यूटर शिक्षा, प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा और भी अनेक प्रकार। ठीक इसी प्रकार “ग्रामीण शिक्षा” उन समस्याओं एवं मुद्दों का अधिगम है, जो ग्रामीण संस्कृति, पारिस्थितिकी, दर्शन, मनोविज्ञान, आर्थिक एवं राजनैतिक पृष्ठभूमि का प्रतिनिधित्व करता है। ग्रामीण शिक्षा के अर्थ के संबंध में प्रत्यक्ष है कि

शिक्षा की अनेक शाखाओं के समान, ग्रामीण शिक्षा भी बहुलता के परिवेश पर, गाँवों को देखने और समझने का विशिष्ट दृष्टिकोण और दर्शन है, जिनमें उन मुद्दों व समस्याओं को केंद्र में रखा जाता है, जो सीधे-सीधे गाँवगारों से संबंधित है। शिक्षा के इस स्वरूप में ग्रामीण मुद्दों, समस्याओं के व्यवस्थापकीय अंतरसंबंधों का बोध व अधिगम शामिल है, जिसके चलते शिक्षा स्वतः “ग्रामीण बाहुल्य हितधारी” सापेक्ष बनकर आवश्यक विकासगामी हो जाएगी। उल्लेखनीय है कि अभी तक ग्रामीण शिक्षा का कोई सर्वमान्य दृष्टिकोण नहीं बन पाया है और न ही कोई सर्वमान्य मॉडल विकसित हो पाया है। हाँ, भारत व उसके जैसे ग्रामीण पृष्ठभूमि वाले अनेक राष्ट्र इसकी उपादेयता को देखते हुए, इस शिक्षा-स्वरूप के विकास आंदोलन को अपने स्तर के सार्थक प्रयासों से समर्थन अवश्य प्रदान कर रहे हैं। फिर चाहे वो प्रयास ग्रामीण शिक्षा के पाठ्यक्रम निर्माण के हों, या फिर ग्रामीण मॉडल के विद्यालय एवं महाविद्यालय के खोलने के हों, अब तो विशिष्ट व विशेषज्ञता-आधारित शिक्षा के आईने में ग्रामीणीय माँगों के मद्देनजर, ग्रामीण विश्वविद्यालयों को साकार रूप देने की योजनाएँ बलवत होती नजर आ रही हैं।

ग्रामीण शिक्षा की भारत के परिप्रेक्ष्य में आवश्यकता एवं महत्व को आजादी के तुरंत बाद ही समझ लिया गया था, इसलिए विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49) ने भारत के शैक्षिक विकास के लिहाज से ग्रामीण विश्वविद्यालय स्थापित करने की सिफ़ारिश की थी।⁶ इसी क्रम में कमोबेश सभी आयोगों व समितियों ने शिक्षा

के जन-सापेक्षता के आधार को महत्वपूर्ण मानते हुए कहा कि यह अनिवार्य है— शिक्षा एवं शैक्षिक-व्यवस्थाएँ स्थानीय जनसमुदाय के साथ घनिष्ठता के साथ रहें, तभी वे फलदायी प्रक्रम बन पाएंगी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में ग्रामीण शिक्षा के निर्देशन में कहा गया है कि ग्रामीण क्षेत्र अपनी हीन-अवसंरचना और सामाजिक सेवाओं सहित, शिक्षित एवं प्रशिक्षित मानव पूंजी का लाभ, तब तक नहीं उठा सकते, जब तक कि ग्रामीण जन की असमानताएँ घटाई नहीं जाएँगी। इस संबंध में नयी शिक्षा नीति का स्पष्ट मत है कि “ग्रामीण विश्वविद्यालय के नवीन प्रतिमान का दृढीकरण तथा विकास महात्मा गाँधी के शिक्षा संबंधी क्रांतिकारी विचारों के अनुरूप किया जाएगा, जिससे कि वह ग्रामीण क्षेत्रों के रूपांतरण हेतु निम्नतम स्तर पर सूक्ष्म नियोजन की चुनौतियों को स्वीकार करे। गाँधीवादी बेसिक शिक्षा संस्थाओं और कार्यक्रमों को सहायता प्रदान की जाएगी।” (रा.शि.नी.1986, खंड-1 व 5, 1.2, 5.42)⁷

राममूर्ति समिति (1990) ने तो पुरजोर शब्दों में ग्रामीण शिक्षा में गाँवगारों की सहभागिता की वकालत की है। समिति के अनुसार यदि शिक्षा को राष्ट्र के विकास के प्रति कोई महत्वपूर्ण योगदान करना है, तो उसे गाँवों अर्थात् स्थानीय समुदाय को सुदृढ़ बनाने वाले कार्यक्रम संचालित करने चाहिए। शिक्षा, लोकतंत्र एवं विकास के समन्वित कार्यक्रम में गाँव को एक महत्वपूर्ण इकाई माना जाना चाहिए। प्रोग्राम ऑफ़ एक्शन (1992) ने शिक्षा में ग्रामीण सामुदायिकता की सहभागिता के लिए ग्रामीण

शिक्षा समिति बनाने की सिफारिश की। इसी प्रकार, प्रशासनिक सुधार आयोग (2005) ने सर्व शिक्षा अभियान को पंचायती राज संस्थाओं में ग्रामीण सामुदायिकता स्वामित्व वाली भावना पैदा कर ग्रामीण शिक्षा के मिशन को आगे बढ़ाया है⁸

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) में शिक्षा के सामाजिक संदर्भों के निर्देशन में कहा गया है कि कोई भी शिक्षा-व्यवस्था, उस समाज से अलग-थलग होकर काम नहीं कर सकती, जिसका वह भाग है, अतः उसका यह उत्तरदायित्व है कि वह गाँवों के बच्चों के लिए शिक्षण-अनुकूल परिवेश विकसित करे तथा आबादी के बहुलांश के दायरे में ग्रामीण क्षेत्रों में बहुश्रेणीय स्कूल खोले जाएँ⁹ गाँधी जी की संकल्पना थी कि भारत में शिक्षा मुफ्त व अनिवार्य रूप से ग्राम स्वराज्य के स्वरूप में मिले, अब शिक्षा अधिकार विधेयक (2009) के लागू होने से उनकी यह संकल्पना वैधानिक रूप ले चुकी है। आज भारत के विकास के संदर्भ में ग्रामीण शिक्षा को पंचायती राज्य संस्थाओं के साथ लिंक कर दिया है, जो सरकार व स्थानीय समुदाय के सहयोग से ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों को एक लक्ष्यपरक दिशा प्रदान कर रही है। उपर्युक्त सभी संदर्भों एवं व्यवहारों से स्पष्ट है कि भारत के संदर्भ में शिक्षा के सही मायने एवं वांछना “ग्रामीण शिक्षा” ही है, जिसके द्वारा हम गाँवों में बसने वाले भारत की जरूरतों और माँगों पर विचार कर, वांछित विकास की धाराओं को एक आवश्यकतापरक दिशा दे सकते हैं।

भारतीय अर्थतंत्र की सापेक्षता

अर्थतंत्र की सापेक्षता का प्रत्यक्ष संबंध जन-कल्याण से होता है, कोई भी अर्थतंत्र अपने सूक्ष्म एवं व्यापक स्वरूप में जन-लाभ से परे नहीं हो सकता। चूँकि भारत गाँवों एवं गाँवगारों का देश है, अतः भारतीय अर्थतंत्र की सार्थकता एवं औचित्य उसके ग्रामीण सापेक्ष होने में ही है। गाँधी की दृष्टि में भारत का वास्तविक आर्थिक विकास स्वाश्रयी ग्रामीण समाज रचना पर आधारित है, जिसमें संपूर्ण उत्पादन छोटी-छोटी इकाइयों द्वारा संचालित हो, जो वहाँ की श्रमशक्ति और संसाधनों का पूर्ण उपयोग कर रही हो तथा उत्पादन का लाभ सभी तक पहुँचा रही हो। इस व्यवस्था को विकसित करने के लिए गाँधी जी ने ग्रामीण उद्योगीकरण को एक माध्यम के रूप में निरूपित किया था।¹⁰ ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार की 2005-06 की वार्षिक रिपोर्ट में इस तथ्य को प्रबलता से स्वीकारा गया है कि भारत द्वारा विविध क्षेत्रों में किया गया आर्थिक विकास और सराहनीय प्रगति तब तक सार्थक नहीं होगी, जब तक की ग्रामीण भारत में निवास करने वाले बड़े समुदाय को बेहतर व सम्मानजनक जीवन न मिल जाए, अतः स्पष्ट है कि भारत के संदर्भ में कृषि, पारंपरिक उद्यम, स्थानीय निकायों के महत्व, ग्रामीण बाज़ार एवं ग्रामीण शिक्षा को केंद्र में रखकर ही अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाया जा सकता है।

देखा जाए तो भारत के आर्थिक विचार का आधार कृषि एवं ग्रामोद्योग ही है, जिससे देश में आर्थिक समानता स्थापित की जा सकती है।

यहाँ विरोध बड़े पूंजीगत उद्योगों एवं स्मार्ट शहरों के निर्माण का नहीं है, विरोध केवल उनसे प्रोत्साहित आर्थिक हितों एवं शक्तियों के ध्रुवीकरण तथा उनसे उत्पन्न आर्थिक विषमताओं का है। उत्पादन में वृद्धि हो रही है, फ़लन आय का प्रवाह भी तेज़ हुआ है, पर सवाल उत्पादन में अधिक-से-अधिक लोगों की भागीदारी का है, विशेषकर ग्रामीण लोगों की भागीदारी का ताकि प्रतिफ़लों की पहुँच भारत की जड़ “गाँव” तक हो सके। समग्र भारत के आर्थिक विकास के लिहाज़ से आज आवश्यकता स्मार्ट शहरों की तर्ज़ पर स्मार्ट गाँवों की भी है, इसलिए भारत में ऐसा अर्थतंत्र विकसित हो, जो विकेंद्रित उद्योगीकरण के द्वारा समृद्धि और स्वाश्रयता से युक्त ग्रामीण सामाजिक अर्थव्यवस्था को जन्म देकर, भारतीय गाँवों को भी स्वावलंबी बना सके। आर्थिक ज्ञानशास्त्र एवं उसके व्यवहार दोनों से यह सत्य सिद्ध होता है कि अर्थतंत्र का मूल चरित्र जन-बहुलता की आवश्यकता एवं आकांक्षाओं के अनुरूप ही होता है, अतः भारत के संदर्भ में अर्थतंत्र की सार्थकता व सापेक्षता गाँवों को जानने, समझने एवं उनको विकसित करने वाली विचारधाराओं में निहित है।

ग्रामीणीय वास्तविकताएँ

वर्तमान भारत की आर्थिक प्रगति में गाँवों की दशा का अवलोकन करें तो नतीजे संतोषजनक नहीं हैं। घटता कृषि क्षेत्र, ग्रामोद्योगों का पतन, स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल नव-प्रवर्तनों का अभाव, स्वास्थ्य, पोषण, पेयजल, स्वच्छता, शिक्षा, साक्षरता, रोज़गार, बिजली, परिवहन के साथ लिंग

व जाति जैसी अनेक समस्याएँ भारतीय अर्थतंत्र में गाँवों की उपस्थिति को कमज़ोर दिखाती हैं। वर्तमान ग्रामीण समाज की आर्थिक सत्ता में भागीदारी लगातार गिर रही है। किसान व निज कामगारों में अपने मूल काम के स्थान पर मज़दूर बनने की प्रवृत्ति तेज़ी से पनप रही है। आज के गाँव अब केवल दोहन एवं सामाजिक व आर्थिक असमानता के पर्याय बनते जा रहे हैं। अर्थव्यवस्था की गरिमा एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ कृषि क्षेत्र का 1950–51 में जी.डी.पी. में 59.2 फ़ीसदी हिस्सा था, जो 2006–07 में घटकर केवल 18.5 फ़ीसदी रह गया है।¹¹ भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि व ग्रामोद्योगों की घटती भागीदारी इस वास्तविकता को प्रकट करती है कि भारतीय अर्थव्यवस्था के प्राथमिक क्षेत्र का ग्रामीण हिस्सा बीमारू है। संयुक्त राष्ट्र ग्रामीण गरीबी रिपोर्ट (2011) के मुताबिक भारत में छोटे किसानों एवं ग्रामीण उद्यमियों की उत्पादकता बढ़ाने पर खास ज़ोर दिए जाने की आवश्यकता है।¹²

हाल के वर्षों में खेती व ग्रामीण कामगारी में वह सम्मान नहीं रहा, जो पहले हुआ करता था। किसानों और अन्य संगठित क्षेत्रों के बीच 1970 के दशक में जो अंतर एक-दो का था, वह अब बढ़कर एक-आठ का हो गया है। स्पष्ट है कि आज भूमि-आधारों का घटना, गिरते जल स्तर, जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों के साथ ग्रामीण उत्पादों के बाजारों की घटत-बढ़त ने भारतीय ग्रामीण बाहुल्य अर्थव्यवस्था को काफ़ी नुकसान पहुँचाया है। इस दृष्टि से आज भारतीय अर्थव्यवस्था व उसके प्रबंधन को “ग्रामीणीय सापेक्षता” अर्जित करवाना आवश्यक है। अनुमान

है कि 2022 तक अर्थव्यवस्था के 24 सेक्टरों में 11 करोड़ अतिरिक्त जनशक्ति की आवश्यकता पड़ेगी। खेतीबाड़ी व ग्रामीणीय कामगारी भी इसमें अहम पक्ष है, इसलिए कौशल विकास के क्षेत्र में खेती व उससे जुड़े व्यवसायों को लेकर काफ़ी मंथन चल रहा है। जून, 2015 में नीति आयोग की उपसमिति की बैठक में खेती और उद्यानिकी को भी कौशल उन्नयन से जोड़ने की रणनीति बनी है, अतः स्पष्ट है कि ग्रामीण संबलता का मूलमंत्र, ग्रामीण शिक्षा के क्षेत्र में किया गया निवेश है।¹³ यह निवेश कौशल विकास की ओर उभरते भारत को ग्रामीण अर्थव्यवस्था के अनुरूप मानवीय संपदा, वांछित आर्थिक परिवर्तन एवं तदनुरूप जनशक्ति-नियोजन करके देगा, जिसके माध्यम से गाँवों में कृषि, उद्योग, रोज़गार एवं आर्थिक समानता जैसे बुनियादी ढाँचों को वांछित बल मिलेगा।

ग्रामीण विकास और शिक्षा का संबंध

शिक्षा और विकास में अन्योन्याश्रित सकारात्मक फलनीय संबंध है, इस दृष्टि से किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिहाज़ से शिक्षा एक महत्वपूर्ण निवेश है। वैसे भी सर्वसिद्ध तथ्य है कि अपने प्राकृत स्वभाव में शिक्षा विकास का ही मार्ग है, उसके ज्ञान, कौशल एवं अभिवृद्धि पक्ष प्रगति के अनिवार्य घटक हैं। रोज़गार, उद्यम, प्रौद्योगिकी एवं तदनुरूप कौशल युक्त मानव पूंजी जैसे महत्वपूर्ण आर्थिक घटक पूर्णतः शिक्षा की उपलब्धता एवं गुणवत्ता पर निर्भर करते हैं। समग्र विश्व में आज ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्थाओं का प्रचलन ज़ोरों पर है। चूँकि भारत

का अर्थतंत्र ग्रामीण पृष्ठभूमि का है, इसलिए स्थान, भूगोल, लिंग, सामाजिक एवं धार्मिक समूहों, शिक्षा तथा कौशलों के निम्न स्तरों के लिहाज़ से ग्रामीण आर्थिक विकास एक चुनौती बना हुआ है। इस कारण आज भारतीय गाँवों में शिक्षा, प्रशिक्षण एवं रोज़गार के अवसर उपलब्ध कराने की आवश्यकता आ खड़ी हुई है, जो ग्रामीण शिक्षा एवं प्रशिक्षण जैसे बुनियादी ढाँचों के निर्माण से ही निर्धारित होगी। वैसे भी यदि हम भारत के वंचित वर्ग का अवलोकन करें तो हमें स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो जाएगा कि भारत में विविध आधारों पर निम्न विकास के लिहाज़ से चिन्हित लक्षित समूह ग्रामीण ही हैं, अतः भारत के संदर्भ में शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य गाँव की मानव पूंजी एवं वंचितों को सक्षम एवं सबल बनाना होना चाहिए।

गाँवों के देश और कृषि-आधारित भारतीय अर्थव्यवस्था में “स्मार्ट गाँव” अब बदलते वक्त में भारत की हकीकत बनते जा रहे हैं। स्मार्ट गाँवों के निर्माण से ही सशक्त भारत बनने की राह प्रशस्त हो सकती है, ऐसा मानना है श्यामा प्रसाद मुखर्जी रअर्बन मिशन का। इस मिशन में गाँवों को शहरों जैसा सुविधायुक्त बनाने के लिए शिक्षा व अन्य आधारभूत सुविधाओं हेतु आगामी तीन वर्षों में 300 ग्रामीण क्लस्टरों पर 5142 करोड़ खर्च करने का प्रावधान रखा गया है।¹⁴ इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत के सतत आर्थिक विकास के लिहाज़ से “ग्रामीण शिक्षा” एक महत्वपूर्ण अवधारणा है, वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए इसकी विषय-वस्तु में श्रम-साधना, विकेंद्रीकरण, स्वावलंबन, परस्पर

सहयोग, सहकारिता, मानव की गुणवत्ता, संरक्षकता, समानता, देशज भाषाएँ एवं विधाएँ, ग्राम स्वराज्य, सामुदायिक सहभागिता, ग्रामीण ई-प्रशासन, ग्रामीण आयोजनाएँ एवं कार्यक्रम, सरकारी संबलन, परंपरागत ऊर्जा के स्रोत, जन-जागरण एवं ग्रामीण मीडिया, लोक सेवाएँ, कृषि नवाचार एवं अनुसंधान, विपणन, पशुपालन, ग्रामोद्योग, स्वयं-सहायता जैसे विकल्पों के साथ-साथ ग्रामीणीय सूचना प्रौद्योगिकी जैसे अनेकानेक महत्वपूर्ण व आवश्यक घटकों को शामिल किए जाने की प्रबल आवश्यकता है। यदि हम इस दिशा में सफल हो जाते हैं तो ग्रामीण सापेक्ष शिक्षा, भारत में वांछित उत्पादन तंत्र को जन्म देगी, जो न केवल भारत के गाँवों को विकास की दिशा देगा, बल्कि अपने समष्टि स्वरूप में संपूर्ण राष्ट्र को एक मजबूत आर्थिक सबलता प्रदान करेगा। इस संबंध में लंदन स्कूल ऑफ़ इकॉनॉमिक्स के प्रोफ़ेसर डेविड ओवेन्स का यह कहना एकदम समीचीन है कि, “उत्पादन व्यवस्था अपने प्रारंभिक काल में भी थी, लेकिन वर्तमान में जो उत्पादन तंत्र है, उसके पीछे शिक्षा का अदृश्य हाथ है।”¹⁵ फिर चाहे वह हाथ भारत के संदर्भ में “ग्रामीण शिक्षा” का ही क्यों न हो!

निष्कर्ष

भारत गाँवों का देश है, उसका भविष्य गाँवों के विकास में ही निहित है। दूसरी ओर, यह भी अटल सत्य है कि सभी प्रकारों के विकासों का राजमार्ग शिक्षा ही है।

भारतीय गाँवों की दशा व अर्थतंत्र की मूल प्रकृति को देखकर, शिक्षा का ग्रामीणोन्मुख होना वर्तमान भारत की प्राथमिक आवश्यकता है। भारत के विकास के लिहाज़ से गाँधी जी का यह कहना, अपने कहे समय से लेकर आज तक सार्थक है— अगर हम यह चाहते हैं और मानते हैं कि भारत के संदर्भ में न केवल गाँवों को जीवित रहना चाहिए, बल्कि उन्हें बलवान और समृद्ध होना चाहिए, तो हमारे सारे दृष्टिकोणों में गाँवों की ही प्रधानता होनी चाहिए।¹⁶ हम सब इस तथ्य से परिचित हैं कि भारत के अर्थतंत्र का “ग्रामीण सापेक्ष” होना, आर्थिक विकास के लिहाज़ से भारतीय अर्थव्यवस्था का मूल गुणधर्म होना चाहिए, वहीं दूसरी ओर हमें यह भी पता है कि हमारे शिक्षातंत्र में गाँवों में बसने वाले भारत की ज़रूरतों और माँगों पर जितना विचार करना चाहिए था, उतना हुआ नहीं है। इस दृष्टि से यदि आज हम “ग्रामीण शिक्षा” की अवधारणा को साकार रूप देते हैं तो हम न केवल भारत के हर नागरिक तक शिक्षा की अलख पहुँचा सकेंगे, बल्कि उसकी आर्थिक उपस्थिति को भी मजबूत बना सकेंगे, जो आज हमारे राष्ट्र की महती आवश्यकता है। चूँकि भारतीय अर्थव्यवस्था की वास्तविकताओं से यह स्पष्ट हो चुका है कि भारत का कल्याण उसके “ग्रामीण सापेक्ष” होने में है और ऐसा तब संभव हो पाएगा, जब भारत में “ग्रामीण शिक्षा” की संकल्पना पूर्ण रूप से परिपक्व हो जाए, तो फिर देरी किसी बात की, आओ, भारत के संदर्भ में ग्रामीण शिक्षा का शंखनाद करें।

टिप्पणी

- ¹गर्ग, वी.पी. 1995. 'शिक्षा में आर्थिक विचार, समता, दक्षता, गुणवत्ता के प्रश्न.' *परिप्रेक्ष्य*. अप्रैल. 1995, अंक 1, वर्ष 2, पृ.सं. 47.
- ²गाँधी, मोहनदास करमचंद. 2004. 'मेरे सपनों का भारत.' सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, उत्तर प्रदेश. पृ.सं. 29-37.
- ³राजस्थान-पत्रिका, जयपुर. 1 अप्रैल 2011, में राष्ट्रीय जनगणना-2011 के जारी आँकड़ों से उद्धृत.
- ⁴कार्नाय, मार्टिन. 2007. 'उच्च शिक्षा और आर्थिक विकास — भारत, चीन तथा 21वीं सदी के संबंध में.' *परिप्रेक्ष्य*. वर्ष 14, अंक 3, दिसम्बर 2007. पृ.सं. 7.
- ⁵लोढ़ा, जितेन्द्र. 2002. 'शिक्षा आर्थिक विकास का एक सशक्त माध्यम.' *प्राइमरी शिक्षक*. वर्ष 27, अंक 3, जुलाई 2002. पृ.सं. 24-30.
- ⁶तिवारी, शंकर प्रसाद. 2011. 'भारत में शैक्षिक सुधार हेतु गठित प्रमुख आयोग/समितियाँ.' *प्रतियोगिता दर्पण*. उपकार प्रकाशन, आगरा, जनवरी 2011. पृ.सं. 10-83.
- ⁷रा.शि.नी. 1986. इकाई- 13, बी.ई.-1, कोटा खुला विश्वविद्यालय राजस्थान. पृ.सं. 70-77.
- ⁸अश्वनी. 2009. 'ग्रामीण शिक्षा में सामुदायिक सहभागिता.' *परिप्रेक्ष्य*. वर्ष 16, अंक 1, अप्रैल 2009. पृ.सं. 6-10.
- ⁹राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005. मई 2006. पृ.सं. 10-11.
- ¹⁰गुरु, एच.एन. 1998. 'गांधीवादी विकास प्रादर्श में ग्रामीण उद्योगीकरण.' *अर्थ-दर्शन*. वर्ष 3, अंक 3, जनवरी-फरवरी 1998. जयपुर, राजस्थान. पृ.सं. 11.
- ¹¹भारत की कृषि-कृषिकोश, Bharat Discovery.org/India से उद्धृत किया गया है.
- ¹²ग्रामीण गरीबी रिपोर्ट 2011—नई वास्तविकताएँ, www.imuchange-org से उद्धृत किया गया है.
- ¹³सिंह, अरविन्द कुमार. 2015. 'कृषि क्षेत्र में कौशल विकास की आवश्यकता.' *योजना*. वर्ष 59, अंक 8, अक्टूबर 2015. पृ.सं. 53.
- ¹⁴मिश्र एवं बोहरा. 2015. 'स्मार्ट गाँवों से सशक्त भारत.' *कुरुक्षेत्र*. वर्ष 62, अंक 02, दिसंबर 2015. पृ.सं. 35-36.
- ¹⁵लोढ़ा, जितेन्द्र. 2002 'शिक्षा आर्थिक विकास का एक सशक्त माध्यम.' *प्राथमिक शिक्षक*. जुलाई. 2002. पृ.सं. 24-30.
- ¹⁶गाँधी जी की पुस्तक, मेरे सपनों का भारत से उद्धृत, पृ.सं. 29-37.